

दिल्ली उच्च न्यायालय: नई दिल्ली

निर्णय तिथि: 6.1.2014

सि.वि.(मु.) 8/2014

श्री रमेश कुमार एवं अन्य

..... याचीगण

द्वारा: श्री अजीत दयाल के साथ

श्री एम.के. बंसल, अधिवक्तागण

बनाम

श्रीमती संगीता खन्ना

.....प्रत्यर्थी

द्वारा: कोई नहीं

कोरम:

माननीय न्यायमूर्ति श्री नजमी वजीरी

माननीय न्यायमूर्ति श्री नजमी वजीरी (खुला न्यायालय)

1. यह याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत, वाद सं. 1327/2011 ("वाद") में विद्वान सिविल न्यायाधीश-14, तीस हजारी न्यायालय ("विचारण न्यायालय") के 11 सितंबर, 2013 के आदेश ("आक्षेपित आदेश") को चुनौती देती है, जिसने याचिकाकर्ता के दो आवेदनों को खारिज कर दिया था; एक सि.प्र.सं. की धारा 151 धारा के तहत दस्तावेजों को अभिलेख पर

रखने के लिए दायर की गई और दूसरी भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 63 के तहत दायर की गई ताकि रखे गए दस्तावेजों की फोटोकॉपी के लिए द्वितीयक साक्ष्य प्रस्तुत किया जा सके। याचिकाकर्ता का मामला यह है कि उक्त दस्तावेज जिसे अब अभिलेख पर लाने की मांग की जा रही है और जिसके लिए अब द्वितीयक साक्ष्य प्रस्तुत करने की मांग की जा रही है, वे अनजाने में लिखित कथन (लिखित कथन) के साथ दायर नहीं किए गए थे क्योंकि इन सभी वर्षों में याचिकाकर्ता/प्रतिवादी इस धारणा के तहत थे कि वे पहले ही दायर किए जा चुके थे। प्रत्यर्थी/वादी ने सिविल न्यायाधीश के समक्ष इस आधार पर आवेदन का विरोध किया था कि ये दस्तावेज लिखित कथन दाखिल करने से पहले से ही मौजूद थे, इसलिए उन्हें अब अभिलेख पर लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

2. प्रत्यर्थी द्वारा याचिकाकर्ता के विरुद्ध जनवरी, 2000 में वाद संपत्ति के कब्जे और कब्जे में हस्तक्षेप के विरुद्ध व्यादेश की मांग करते हुए वाद दायर किया गया था। याचिकाकर्ता ने जुलाई, 2002 में वाद की पोषणीयता के बारे में आपत्ति करते हुए अपना लिखित बयान दायर किया, अन्यथा वाद का विरोध किया। उन्होंने 2

अप्रैल, 2013 को साक्ष्य के तौर पर अपना शपथ-पत्र दायर किया। 14 अगस्त, 2013 को – अर्थात्, अपना लिखित कथन दाखिल करने के ग्यारह साल बाद और साक्ष्य के तौर पर शपथ-पत्र दाखिल करने के चार महीने बाद – उन्होंने दो आवेदन दायर किए, एक अतिरिक्त दस्तावेजों को अभिलेख पर रखने के लिए और दूसरा द्वितीयक साक्ष्य पेश करने के लिए इस आधार पर कि असावधानी के कारण उन्हें अभिलेख पर नहीं रखा जा सका; कि याचिकाकर्ता को यह वास्तविक धारणा थी कि दस्तावेज पहले ही दायर किए जा चुके थे, लेकिन इस भ्रम का पता तब चला जब दस्तावेजों को दिखाने का अवसर आया। प्रत्यर्थी द्वारा इस आधार पर आवेदन का विरोध किया गया था कि जिन दस्तावेजों को अब पेश करने की मांग की गई है, वे लिखित कथन दाखिल करने से पहले की अवधि के हैं, उन्हें लिखित कथन के साथ प्राप्त किया और दायर किया जा सकता था और निश्चित रूप से 11 साल बाद अनुमति नहीं दी जा सकती है।

3. पक्षकारगण की दलीलों पर विचार करने के बाद, विचारण न्यायालय ने दोनों आवेदनों को खारिज कर दिया। यह प्रेक्षित किया गया कि प्रतिवादी का यह तर्क कि दस्तावेज – उनमें से

पंद्रह – लिखित कथन दाखिल करने के समय दायर नहीं किए गए थे और न ही साक्ष्य के तौर पर शपथ-पत्र दाखिल करने के समय *असावधानी* के कारण दायर नहीं किए गए थे, न तो विश्वसनीय है और न ही इस स्तर पर अनुमति देने के लिए पर्याप्त आधार है – जब वादी के साक्ष्य बंद कर दिए गए थे। यह देखा गया कि यह अकल्पनीय है कि एक पक्षकार ने लिखित बयान दाखिल करने के ग्यारह साल बाद की अवधि में, और साक्ष्य में शपथ-पत्र दायर करने के बाद भी, *अनजाने में* इस तरह के कई सारे दस्तावेज दायर नहीं किए होंगे। इसने तर्क दिया कि आवेदक को साक्ष्य दर्ज करने में विफल रहने के लिए ठोस और पर्याप्त कारण प्रदान करना चाहिए। यह अभिनिर्धारित किया गया कि दस्तावेजों को दायर नहीं किए जाने की केवल अज्ञानता विधि में न तो पर्याप्त और न ही ठोस कारण है। यह देखते हुए कि प्रत्यर्थी ने पहले ही मामले में साक्ष्य पेश कर दिया है और याचिकाकर्ता ने साक्ष्य प्रस्तुत करने के चरण में ही इन दस्तावेजों को प्रस्तुत करने की मांग की है, यह अभिनिर्धारित किया गया कि दस्तावेजों को दाखिल करने की अनुमति देने से प्रत्यर्थी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है।

4. आक्षेपित आदेश से व्यथित याचिकाकर्ता ने वर्तमान याचिका दायर की है। यह तर्क दिया गया था कि विचारण न्यायालय दस्तावेजों को दाखिल करने की अनुमति नहीं देकर अपने निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में विफल रहा है। यह तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता ने मामले में हमेशा तत्परता से काम किया है और किसी भी स्थिति में, यदि दस्तावेजों को अभिलेख पर रखा जाता है तो प्रत्यर्थी पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार तर्क दिया कि विचारण न्यायालय के समक्ष विवाद के प्रभावी न्यायनिर्णयन के लिए दस्तावेज आवश्यक थे, और इसलिए उन्हें दिखाने की अनुमति दी जानी चाहिए।

5. मैं याचिकाकर्ता के तर्कों से सहमत नहीं हूँ; आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता का कोई कारण नहीं है। इसके विपरीत, आक्षेपित आदेश लिखित कथन के साथ मूल रूप से दाखिल नहीं किए गए दस्तावेजों को दाखिल करने की अनुमति देने के संबंध में उच्चतम न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुरूप है।

6. हालांकि न तो विचारण न्यायालय के समक्ष आवेदन और न ही आक्षेपित आदेश में प्रावधान का विशिष्ट संदर्भ दिया है, वर्तमान मामला सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (“कोड”) की पहली अनुसूची के आदेश VIII नियम 1क(3) के प्रावधानों द्वारा नियंत्रित होता है। उक्त प्रावधान निम्नानुसार है:

1क. प्रतिवादी का कर्तव्य उन दस्तावेजों को पेश करना है जिस पर उसने राहत का दावा या भरोसा किया है

(1) जहाँ प्रतिवादी अपने बचाव का आधार किसी दस्तावेज पर किया है या अपने बचाव या प्रतिदावे के समर्थन में अपने कब्जे या अधिकार में किसी दस्तावेज पर निर्भर है, वह ऐसे दस्तावेज को एक सूची में दर्ज करेगा, और जब उसके द्वारा लिखित कथन प्रस्तुत किया जाएगा तो उसे न्यायालय में पेश करेगा और साथ ही, लिखित कथन के साथ दाखिल किए जाने वाले दस्तावेज और उसकी एक प्रति प्रदान करेगा।

(2) जहां ऐसा कोई दस्तावेज प्रतिवादी के कब्जे या अधिकार में नहीं है, वह, जहां भी संभव हो, यह बताएगा कि यह किसके कब्जे या अधिकार में है।

(3) कोई दस्तावेज जिसे इस नियम के तहत प्रतिवादी द्वारा न्यायालय में पेश किया जाना चाहिए, लेकिन, इस प्रकार से प्रस्तुत नहीं किया गया है, न्यायालय की अनुमति के बिना, वाद की सुनवाई में उसकी ओर से साक्ष्य में प्राप्त नहीं किया जाएगा।

(4) इस नियम की कोई बात दस्तावेजों पर लागू नहीं होगी-
क) वादी के गवाहों की प्रति-परीक्षा के लिए पेश करना, या
ख) केवल गवाह को उसकी याददाश्त ताज़ा करने के लिए सौंप दिया गया।

7. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि अतिरिक्त दस्तावेज दाखिल करने के लिए याचिकाकर्ता के आवेदन को संहिता के आदेश VIII नियम 1क(3) की कसौटी पर परीक्षण किया जाना है। उक्त प्रावधान, जिसे 1999 में संशोधन के द्वारा संहिता में जोड़ा गया था, यह प्रावधान करता है कि प्रतिवादी के बचाव के समर्थन में किसी दस्तावेज को दाखिल करने का उपयुक्त समय तब होता है जब लिखित कथन दायर किया जाता है। यह प्रावधान करता है कि नियम के अनुसार, कोई दस्तावेज जो लिखित कथन के साथ प्रस्तुत नहीं किया गया है या लिखित कथन के साथ दायर सूची में दर्ज नहीं किया गया है, उसे न्यायालय की अनुमति के बिना साक्ष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए।

8. आदेश VIII नियम 1क(3) के तहत विधि का व्यादेश, जहां यह न्यायालय को साक्ष्य के तौर पर किसी दस्तावेज स्वीकार करने से रोकता है जिसे आदेश VIII नियम 1क(1) के अधिदेश के अनुसार पेश नहीं किया गया है, उसे हल्के में नहीं लिया जाना चाहिए, युक्ति और विशेष रूप से वर्तमान मामले जैसे मामलों में, जहां अत्यधिक देरी – जहाँ प्रतिवादी द्वारा उक्त प्रावधान के तहत अंततः न्यायालय का रुख करने में 11 वर्षों से अधिक की बहुत

ज्यादा विलंब किया गया है। प्रतिवादी द्वारा अंततः उक्त प्रावधान के तहत न्यायालय का रुख करने के कारण हुआ है। उच्चतम न्यायालय ने *आर.एन. जादी ब्रदर्स और अन्य बनाम सुभाषचंद्र*, (2007) 6 एस.सी.सी. 420) मामले में पी.के. बालासुब्रमण्यन न्या. (जो बहुमत से सहमत थे) के द्वारा बोलते हुए सख्त व्याख्या का पालन करने और 1999 में संहिता में संशोधनों को पूरा प्रभाव देने के महत्व पर जोर दिया - जिसमें वर्तमान प्रावधान शामिल था। उन्होंने कहा कि संशोधनों में विधायी मंशा स्पष्ट है - पक्षकारगण, विशेष रूप से किसी वाद में प्रतिवादी द्वारा मुकदमेबाजी में अनुचित देरी को रोकने के लिए। विचारण न्यायाधीश ने बिना किसी उचित कारण के, इतनी अधिक देरी के बाद अतिरिक्त दस्तावेज दाखिल करने के याचिकाकर्ता के आवेदन पर हल्के में विचार करने से इंकार करके सही किया।

9. इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने भी *वाई.एन. गुप्ता बनाम जगदीश चंद्र शर्मा और अन्य*, (सि.वि.(मु.) सं. 1199/2009) में आदेश VIII नियम 1ए(3) अधिदेश की अनदेखी करने के प्रति आगाह किया था है:

"यहां तक कि असंशोधित सिविल प्रक्रिया संहिता ने अभिवाकों और दस्तावेजों को दाखिल करने के लिए एक विशिष्ट प्रक्रिया दी गई है और ऐसी परिस्थितियां भी बताई गई हैं, जिनके तहत पक्षकारगण द्वारा अतिरिक्त दस्तावेज दाखिल किए जा सकते हैं। सभी दस्तावेजों को पक्षकारगण द्वारा अभिवाकों के साथ दाखिल किया जाना चाहिए था। जो दस्तावेज पक्षकारगण के अधिकार और कब्जे में नहीं थे, उसका उल्लेख एक सूची में किया जाना आवश्यक था और प्रत्येक दस्तावेज के सामने यह उल्लेख किया जाना था कि यह किसके कब्जे में है, क्या यह खो गया है या न्यायालय में दस्तावेज को कैसे साबित करने की मांग की गई है। यह प्रक्रिया संबंधी आवश्यकता अनिवार्य थी ताकि विचारण व्यवस्थित तरीके से आगे बढ़े और दोनों पक्षकार एक-दूसरे के मामले और उनके द्वारा भरोसा किए गए दस्तावेजों को जानें। केवल उन दस्तावेजों को पक्षकारगण द्वारा रोक दिया जा सकता है जिसे वे गवाहों से प्रति-परीक्षा में रखने का आशय रखते थे। अतिरिक्त दस्तावेज केवल पक्षकारगण द्वारा प्रस्तुत किए जा सकते हैं जहां समुचित परिश्रम और प्रयास के बावजूद, पक्षकार उन दस्तावेजों में से किसी पर हाथ नहीं लगा सकती थी या दस्तावेज पक्षकार के ज्ञान में नहीं थे और उन्हें बाद में विचारण के लंबित रहने के दौरान पक्षकार द्वारा खोजा गया था। अतिरिक्त दस्तावेजों की अनुमति देने से पहले न्यायालय को न केवल दस्तावेजों की प्रासंगिकता के बारे में संतुष्ट होना था, बल्कि उन कारणों के बारे में भी बताया जाना चाहिए था कि दस्तावेजों को प्रारंभिक चरण में या वादपत्र के साथ या लिखित कथन के साथ दायर क्यों नहीं किया जा सका।

सिविल प्रक्रिया संहिता और अन्य कानूनों में संसद द्वारा समय-समय पर किए गए संशोधन संहिता के कामकाज को देखने के बाद और इस बात पर विचार करने के बाद कि विधि में बदलाव की आवश्यकता है, किए गए थे। इन सांविधिक संशोधनों को न्यायालयों द्वारा नजरअंदाज या दरकिनार नहीं

किया जा सकता है या इन पर जोर नहीं दिया जा सकता है क्योंकि किसी न किसी मामले में वे किसी पक्षकार को नुकसान पहुंचाते हैं। किसी व्यक्ति का नुकसान कानून की अनदेखी करने का आधार नहीं हो सकता है। सामान्य अनुप्रयोग के लिए और विधि को निश्चितता देने के लिए सांविधिक प्रावधान किए जाते हैं। यदि विधि अनिश्चित रहता है, तो पक्षकारगण के लिए विधि को तोड़ने-मरोड़ने का दिन बन जाता है और इसीलिए यह आवश्यक है कि विधि के प्रक्रियात्मक पहलुओं को भी सुलझाया जाना चाहिए और उसे इतना हल्के में नहीं लिया जाना चाहिए कि न्यायालयों को जब चाहे और जहां भी वे चाहें, प्रक्रियात्मक पहलुओं की अनदेखी करने की स्वतंत्रता हो। इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्रक्रिया न्याय की दासी है लेकिन जो न्याय है वह एक व्यक्तिगत न्यायाधीश की अवधारणा और विचार नहीं हो सकता है। न्याय को व्यापक परिप्रेक्ष्य से देखना होगा। यदि किसी न्यायाधीश को संसद द्वारा निर्धारित प्रक्रिया का पालन किए बिना आवेदनों पर फैसला करने का विवेकाधिकार दिया जाता है, तो इससे पूरी तरह से अव्यवस्था पैदा होगी और विधि की अवमानना होगी और भ्रष्टाचार बढ़ेगा।
(जोर दिया गया)

10. उपरोक्त मामले में, विचारण न्यायालय ने यह देखने के बावजूद कि दस्तावेजों को दाखिल करने में देरी के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया था, आदेश VIII नियम 1क(3) के तहत आवेदन को केवल इस आधार पर अनुमति दी कि दस्तावेजों की सत्यता के रूप में कोई आपत्ति नहीं उठाई गई है और दस्तावेज विवाद के प्रभावी न्यायनिर्णयन के लिए प्रासंगिक थे। हालांकि, वर्तमान मामले में, विचारण न्यायालय याचिकाकर्ता के तर्क को

खारिज करने में सही था कि दस्तावेजों को केवल इसलिए अभिलेख पर लिया जाना चाहिए क्योंकि वे विवाद के प्रभावी न्यायनिर्णयन के लिए कथित रूप से आवश्यक थे।

11. उच्चतम न्यायालय ने *मदन लाल बनाम श्याम लाल*, (2002) 1 एस.सी.सी. 535 में जोर देते हुए कहा कि एक दस्तावेज जो उचित स्तर पर दायर नहीं किया गया है, उसे न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया जाएगा। *अलीगढ़ रोलर फ्लोर मिल्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम परविंदर खन्ना*, (सि.वि.(मु.) सं. 1085/2010 में 30 अगस्त, 2010 को निर्णय) और *दुर्गा देवी बनाम ललिता राक्यान*, (सि.वि.(मु.) सं. 1141/2010 में 9 सितंबर, 2010 का निर्णय) में इस न्यायालय द्वारा आदेश VIII नियम 1क(3) के अंतर्गत आवेदनों के संबंध में इस सिद्धांत का पालन किया गया है।

12. आदेश VII नियम 14(3) सि.प्र.सं. के प्रावधानों के *सम विषयक होने* के कारण - *सलेम बार एडवोकेट्स एसोसिएशन बनाम भारत संघ* ((2005) 6 एस.सी.सी. 344) में उच्चतम न्यायालय द्वारा भी मान्यता प्राप्त तथ्य - उक्त प्रावधान पर लागू सिद्धांत आदेश VIII नियम 1क(3) सि.प्र.सं. के तहत आवेदनों पर

विचार करने के लिए सभी पक्षकारगण पर लागू होंगे। इसी प्रकार का दृष्टिकोण एफ. हॉफमैन ला रोश लिमिटेड बनाम सिप्ला लिमिटेड, (2012 (52) पी.टी.सी. 1) में इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पहले भी अपनाया गया था।

13. जिस पृष्ठभूमि में प्रावधान अस्तित्व में आया और आदेश VII नियम 14 के तहत न्यायालयों की विवेकाधीन शक्ति के दायरे पर चर्चा करते हुए, इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने गोल्ड रॉक वर्ल्ड ट्रेड लिमिटेड बनाम विजय लक्ष्मी इंजीनियरिंग वर्क्स लिमिटेड (2007 (143) डी.एल.टी. 113) में कहा:

"4. मैंने पक्षकारगण के अधिवक्ता को सुना है। सलेम एडवोकेट बार एसोसिएशन (पूर्वोक्त) में उच्चतम न्यायालय का फैसला अतिरिक्त सबूतों के संदर्भ में था। 1976 के संशोधन के आधार पर, नियम 17-क को आदेश 18 में पेश किया गया था। उक्त नियम 17-क ने न्यायालय को ऐसे साक्ष्य पेश करने की अनुमति देने का विवेकाधिकार प्रदान किया जो पहले ज्ञात नहीं थे या जिन्हें उचित परिश्रम के बावजूद पेश नहीं किया जा सका। आदेश 18 के नियम 17-क को सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1999 द्वारा हटा दिया गया था जो 1.7.2002 से प्रभावी हुआ। इस विलोपन प्रभाव पर विचार करते हुए उच्चतम न्यायालय ने कहा: -

13. सलेम एडवोकेट बार एसोसिएशन (I) बनाम भारत संघ, 2002 इंडलों एस.सी. 1374 के मामले में, यह स्पष्ट किया गया है कि आदेश 18 नियम 17-क को हटाने पर, जो

अतिरिक्त साक्ष्य का प्रावधान था, संशोधन लागू करने से पहले मौजूद विधि अर्थात् 1-7-2002 से बहाल हो जाएगा। 2002 के संशोधन अधिनियम द्वारा नियम को हटा दिया गया था। आदेश 18 नियम 17-क को अंतःस्थापित करने से पहले भी, न्यायालय के पास पक्षकारगण को ऐसे सबूत पेश करने की अनुमति देने की अंतर्निहित शक्ति थी जो उन्हें पहले ज्ञात नहीं थे या जो उचित परिश्रम के बावजूद पेश नहीं किया जा सकता था। आदेश 18 नियम 17-क ने कोई नया अधिकार नहीं बनाया, बल्कि केवल स्थिति को स्पष्ट किया। इसलिए, आदेश 18 नियम 17-क को हटाने से बाद के चरण में साक्ष्य पेश करने का अधिकार नहीं है। न्यायालय को संतुष्ट करने वाले पक्षकार समुचित परिश्रम करने के बाद भी सबूत उसके ज्ञान में नहीं था या उस समय पेश नहीं किया जा सकता था जब पक्षकार साक्ष्य प्रस्तुत कर रहा था, न्यायालय बाद के चरण में ऐसे साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति दे सकती है जो उचित प्रतीत हो सकती हैं।

इस प्रकार, उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि नियम 17-क का अंतःस्थापन केवल न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का स्पष्टीकरण था, जो पक्षकारगण को ऐसे साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति देता है, जो उन्हें पहले ज्ञात नहीं थे या जिन्हें उचित परिश्रम के बावजूद प्रस्तुत नहीं किया जा सका था। वादी के विद्वान अधिवक्ता ने आदेश 7 नियम 14 (3) के संबंध में भी न्यायालय की इस अंतर्निहित शक्ति का उपयोग करने की मांग की, जो विलंबित चरण में दस्तावेजों के प्रस्तुतीकरण से संबंधित है। यह मानने में कोई कठिनाई नहीं होगी कि उच्चतम न्यायालय के उक्त निर्णय में उल्लिखित अंतर्निहित शक्ति का उपयोग तब भी किया जा सकता है जब आदेश 7 के नियम 14(3) के संदर्भ में अनुमति देने का प्रश्न उठता है। नतीजतन, विलम्बित चरण में साक्ष्य के रूप में दस्तावेज प्राप्त करने के लिए न्यायालय की अनुमति दिए जाने से पहले, दस्तावेज प्रस्तुत करने की मांग करने वाले पक्षकार को न्यायालय को यह संतुष्ट करना

होगा कि उक्त दस्तावेज पहले पक्षकार के ज्ञान में नहीं था या उचित परिश्रम के बावजूद उचित समय पर प्रस्तुत नहीं किए जा सके। प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि दस्तावेज वादी और एक विदेशी पक्षकार (कोगटेक्स) के बीच के समझौते से संबंधित हैं। दिनांक 7-10-1996 को अभि.सा.-1 की प्रतिपरीक्षा में दर्ज विवरण के अनुसार समझौता हुआ था।

हालांकि, 11.9.1997 को दायर की गई प्रति में भी इस कथन की एक भी झलक नहीं है। वास्तव में, वादी द्वारा वर्ष 2003 में साक्ष्य के रूप में शपथ-पत्र दायर किया गया था और उस शपथ-पत्र में भी उन दस्तावेजों का कोई संदर्भ नहीं है जिसे अब पुनः पेश करने की मांग की गई है। मेरे विचार में, ये परिस्थितियां स्पष्ट रूप से दर्शाती हैं कि न्यायालय की अनुमति देने से पहले आवश्यक शर्तों को पूरा नहीं किया गया है। यह नहीं कहा जा सकता है कि वादी को पहले दस्तावेजों के बारे में पता नहीं था, या वादी की ओर से उचित परिश्रम के बावजूद इसे पेश नहीं किया जा सका। अब पेश की जाने वाली सभी सामग्री, कम से कम वर्ष 2003 में वादी के ज्ञान के भीतर थी। चूंकि वादी उस समय पर्याप्त मेहनती नहीं था, इसलिए इस न्यायालय के पास इसके अनुरोध को अस्वीकार करने के अलावा कोई विकल्प नहीं बचा है।”

(जोर दिया गया)

14. संहिता के आदेश VIII नियम 1क(3) के तहत न्यायालय द्वारा प्रतिवादी के पक्ष में विवेकाधिकार का प्रयोग करने के लिए,

प्रतिवादी को न्यायालय को निम्नलिखित अर्हता मानदंडों को पूरा करना होगा:

- i) कि दस्तावेज पहले पक्षकार के ज्ञान में नहीं थे; या
- ii) प्रतिवादी द्वारा समुचित परिश्रम करने के बावजूद दस्तावेजों को पेश नहीं किया जा सका।

15. एक अन्य मामले डॉ. जे.के. जैन बनाम कृष्णाराम बलदेव इन्वेस्टमेंट एंड फाइनेंस कंपनी लिमिटेड (सी.वी.(मु.) सं. 217/2008 में 14 अगस्त, 2008 का निर्णय), में इस न्यायालय के विद्वान न्यायाधीश द्वारा एकसमान दृष्टिकोण अपनाया गया था, जिसमें यह टिप्पणी किया गया:

"न्यायालय केवल पर्याप्त कारण दिखाने पर ही ऐसे दस्तावेजों को पेश करने की अनुमति दे सकती है। वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता द्वारा बाद में पेश किए गए दस्तावेज ऐसे नहीं थे जो याचिकाकर्ता के अधिकार में नहीं था या याचिकाकर्ता द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता था। याचिकाकर्ता ने लिखित कथन में इन दस्तावेजों का कोई संदर्भ नहीं दिया था और न ही उन दस्तावेजों की सूची दायर की थी जिस पर भरोसा किया गया था। मुझे इस बात का कोई कारण नहीं मिलता कि न्यायालय को इस तरह के दस्तावेजों को देर से दाखिल करने की अनुमति क्यों देनी चाहिए, जब याचिकाकर्ता इन दस्तावेजों की प्रासंगिकता और लिखित कथन के साथ इसे

दाखिल नहीं करने के कारणों के बारे में न्यायालय को संतुष्ट करने में सक्षम नहीं है।

16. आक्षेपित आदेश ने स्पष्ट रूप से निर्धारित किया है कि याचिकाकर्ता दस्तावेजों को दाखिल करने की अनुमति देने के लिए पर्याप्त और ठोस कारण प्रदान करने में विफल रहा है। विचारण न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता का मामला यह नहीं था कि दस्तावेज उसके अधिकार में नहीं था, न ही याचिकाकर्ता ने समुचित परिश्रम का कोई मामला बनाया है, जिसके बावजूद दस्तावेज दायर नहीं किया जा सका। इसके विपरीत, आक्षेपित आदेश याचिकाकर्ता की ओर से परिश्रम की कमी को देखता है, क्योंकि लिखित कथन दाखिल करने की तारीख से ग्यारह साल की अवधि के बाद भी दस्तावेज दायर नहीं किए गए थे और बाद में दायर किए गए साक्ष्य में भी इसका उल्लेख नहीं किया गया था। याचिकाकर्ता द्वारा दिया गया एकमात्र स्पष्टीकरण असावधानी है, जिसे आदेश VIII नियम 1क(3) के तहत विवेकाधिकार के प्रयोग के आधार के रूप में नहीं माना जा सकता है – यह दृष्टिकोण इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा *हरकेश सिंह और अन्य*

बनाम वेद राज, (सि.वि.(मु.) सं. 945/2007 में 2 फरवरी, 2010 का आदेश) में दिए गए निर्णय से भी प्रतिध्वनित होता है।

17. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, याचिकाकर्ता ने पर्याप्त मामला प्रस्तुत नहीं किया है, यह बिना गुणागुण का है। आक्षेपित आदेश में इसके कारण और निष्कर्ष विधि में स्वीकार्य दृष्टिकोण है। यह महत्वपूर्ण अनियमितता से ग्रस्त नहीं है जिससे इस न्यायालय के पुनरीक्षण अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप की आवश्यकता हो। उपरोक्त कारणों से याचिका खारिज की जाती है।

नजमी वजीरी

(न्यायाधीश)

06 जनवरी, 2014

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेजी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।